लघु उपन्यास

भुवन सोम

“बनफूल”

हिन्दी अनुवाद

जयदीप शेखर

PREVIEW

भुवन सोम

बँगला लघु उपन्यास 'भुबन सोम' (1956) का हिन्दी अनुवाद,
जिस पर मृणाल सेन ने 1969 में फिल्म बनायी थी

लेखक

"बनफूल"

अनुवादक

जयदीप शेखर

जगप्रभा

jagprabha.in

Cover Photo: Jaydeep Shekhar

eBook

Bhuwan Som: Name of the main character of the story
Hindi translation of the Bengali novelette 'Bhuban Som' (1956)
Original Author: "Banaphool"
(Balai Chand Mukhopadhyay)
Hindi Translation: Jaydeep Das
(Pen Name: Jaydeep Shekhar)
Copyright © 2017 Translator
All rights reserved
Available at: jagprabha.in

"बनफूल"

(1899 - 1979)

बँगला साहित्य के सुप्रसिद्ध कथाकार "बनफूल" (बालाय चाँद मुखोपाध्याय) का रचना-संसार यूँ तो बहुत विशाल है- 14 नाटक, 60 उपन्यास, 586 कहानियाँ, हजारों कविताएं, अनगिनत लेख, कई एकांकियाँ और एक आत्मकथा; लेकिन वे जाने जाते हैं अपनी पेज भर लम्बी सरस, चुटीली कहानियों के कारण, जो विस्मय के साथ समाप्त होती हैं- जैसे कि एक अच्छा शेर। ऐसे शब्दचित्रों को अँग्रेजी में 'विनेट' (Vignettes) अर्थात् 'बेलबूटे' कहा जाता है।

"बनफूल" के कई उपन्यासों को बँगला साहित्य में कालजयी कृति होने का सम्मान हासिल है और उनके कई उपन्यासों पर हिन्दी-बँगला में फिल्में बन चुकी हैं। इस 'भुवन सोम' पर भी फिल्म बनी थी।

विलक्षण प्रतिभा के धनी इस कथाकार के नाम से हिन्दीभाषी साहित्यरसिक कम परिचित हैं, क्योंकि उनकी रचनाओं का हिन्दी अनुवाद बहुत कम हुआ है- नहीं के बराबर।

*****

भुवन सोम

अनिल बहुत पहले ही जहाज घाट पहुँच गया था। वह सीधे मैदानी रास्ते से पैदल चलते हुए आया था। उसके कपड़ों पर चिड़चिड़ी के अनगिनत काँटे चिपक गये थे और पैर दोनों धूल-धूसरित हो रहे थे।

आकर देखा उसने, 'घाट-गाड़ी' *(घाट तक आने वाली पैसेन्जर ट्रेन)* अभी तक नहीं पहुँची थी और स्टीमर भी खासा 'लेट' था। गंगा के किनारे खड़े होकर पूर्वी क्षितिज की तरफ नजरें गड़ाये कुछ पल देखता रहा वह। उँहू, जहाज का कोई अता-पता नहीं था, धुआँ तक नहीं दिखायी पड़ रहा था।

फिर भी वह खड़ा रहा, क्योंकि उड़ते राजहँसों की एक पंक्ति दिखायी पड़ गयी थी उसे। राजहँसों की पंक्ति, अँग्रेजी में जिन्हें कहते हैं- 'बार हेडेड गुज' और अपने यहाँ के शिकारी जिन्हें 'गीज' कहते हैं। लुब्ध दृष्टि से अनिल ताकता रहा।

याद आया, पिछले साल एक साथ तीन राजहँसों का शिकार किया था उसने। अचानक फड़िंग की याद आ गयी। *(बँगला उच्चारण 'फोड़िंग', इसका अर्थ होता है- तितली, मगर अक्सर यह किसी बच्चे या व्यक्ति का 'पुकार नाम' होता है।)* वह भी था साथ में। दुबला-पतला चेहरा, पहनावा लाल धारीदार कमीज, बड़े-बड़े पीले दाँत, लाल बाल, आँखें भी लाल। आधा से ज्यादा माँस उसने अकेले ही खाया था। अच्छी खुराक थी उसकी। अनिल से उसने फिर आने की बात कही थी, मगर वह नहीं आया; अब आयेगा भी नहीं। छह महीने पहले ही एक मोटर एक्सीडेण्ट में चल बसा है वह।

फड़िंग बहुत ही खुले मन का व्यक्ति था, कोई भी बात वह गोपनीय नहीं रख पाता था। यहाँ तक कि उसने एक बार चोरी की थी- यह बात भी उसने बता रखी थी। फड़िंग की याद आने से अनिल थोड़ा अन्यमनस्क हो गया।

"अरे, ये तो अनिल बाबू हैं! क्या हाल है, कब आना हुआ?"

रेलवे के टिकट कलेक्टर सखीचाँद कब जो पीछे आकर खड़े हो गये थे- इसका अनिल को पता ही नहीं चला था।

"अभी-अभी आया। भुवन काका इसी स्टीमर से आ रहे हैं। उन्हीं को लेने आया हूँ। आज तो स्टीमर काफी 'लेट' मालूम पड़ रहा है- "

"हाँ, बहुत लेट है। आपके चाचाजी भी हैं? यह तो नहीं जानता था। कहाँ से आ रहे हैं वे?"

"साहेबगंज से। भुवन सोम, मेरे सगे चाचा नहीं हैं- लेकिन उनके साथ हमारी घनिष्ठता काफी पुरानी है। सगे चाचा से भी ज्यादा अपने हैं वे।"

"भुवन सोम मतलब? ए.टी.एस. भुवन सोम?"

"हाँ।"

यह सुनकर सखीचाँद की आँखें-मुँह-नाक-भौंहे-ठुड्डी सभी एकसाथ बिचक गये और ऐसा होने से वे थोड़ा असहज भी हुए। अनिल बाबू के सामने ऐसा भाव प्रकट न करना ही ठीक रहता शायद। लेकिन अगले ही पल खुद को सम्भाल लिया उन्होंने।

"मिस्टर सोम आपके चाचाजी हैं, यह नही पता था।"

अनिल हँसकर बोले, "बहुत कड़क अफसर हैं, क्यों?"

"बहुत। ऐसे लोग किसी के सगे नहीं होते। अपने बेटे तक की नौकरी खा गये हैं। आपको तो पता ही होगा।"

मृदु हँसी हँसकर अनिल ने सिर हिलाया, "पता है।"

"यहाँ किसलिए आ रहे हैं?"

"चिड़ियों का शिकार करने।"

"बहुत अच्छे शिकारी होंगे?"

"शौक तो बहुत है। लेकिन शिकार प्रायः नहीं ही कर पाते हैं।"

"अब चिड़िया कोई रेलवे की नौकर तो है नहीं।"

एक कटु हँसी हँसकर आगे बढ़ गये सखीचाँद। फिर गर्दन घुमाकर बोले, "यहाँ गंगा किनारे कब तक खड़े रहियेगा? इससे तो बढ़िया होगा, मेरे डेरे पर चलिये। स्टीमर आने में अभी बहुत देर है। तब तक चलिये, शतरंज की एक बाजी हो जाय।"

"चलिये, यही सही। ...श्रीमतीजी आ गयी हैं क्या?"

"अरे नहीं साहब, हमारे समाज में 'गौना' का बड़ा झंझट है।"

खाँटी बँगाली होने पर उच्चारण 'झंझाट' होता। सखीचाँद हालाँकि बँगला बहुत बढ़िया बोल लेते हैं, मगर मूल रुप से वे बिहारी ग्वाला हैं। इसलिए 'द्विरागमन' न कहकर उन्होंने 'गौना' कहा। हाल के दिनों में 'यादव' उपाधि धारण कर उनके

बहुत-से बिरादरी वाले आत्म-मर्यादा बढ़ाने में लगे हुए हैं। बहुतों ने पढ़ाई-लिखाई भी की है।

बातचीत से सखीचाँद बिहारी लगते ही नहीं थे। घाट से मात्र सात-आठ मील दूर उनका ससुराल था। सोचा था, जब यहाँ तबादला हो गया है, तो पत्नी को यहीं ले आयेंगे- रेलवे क्वार्टर में। लेकिन ससुराल के बड़े-बुजुर्गों ने 'झंझट' लगा दिया- तीन महीनों तक कोई शुभ दिन नहीं है।

इस बीच इन्हीं भुवन सोम ने उनके खिलाफ रिपोर्ट भी लिख दी है। हालाँकि दोष साखीचाँद का ही था, मगर आजकल घूँस कौन नहीं लेता है! ऊपरी-कमाई को कोई भला हाथ से जाने देता है? वे जो मोटे, काले माल-बाबू हैं, घूँस खाकर ही तो लाल हुए हैं। सखीचाँद ने तो सिर्फ दो-चार रुपये कमाये थे। कोई गोरे साहब अफसर होते, तो थोड़ा-सा धमकाकर छोड़ देते। लेकिन सोम साहब (बँगाली साहब हैं न) ने लम्बा-चौड़ा रिपोर्ट लिख दिया है- जैसा कि सुनने में आ रहा है।

सखीचाँद ने ऑफिस से पता लगवाया था- रिपोर्ट अभी तक वहाँ पहुँची नहीं थी। शायद अभी न भेजा हो, मगर भेजेंगे तो जरुर। नम्बरी बदमाश हैं वे। बँगाली लोग जिसे 'एक नम्बर का बदमाश' कहते हैं, बिहारी उसे ही 'नम्बरी बदमाश' कहते हैं।

भुवन सोम के साथ अनिल बाबू की आत्मीयता है जानकर सखीचाँद के मन में थोड़ी आशा जागी कि यदि...

"अच्छा, महीने भर पहले जब सोम साहब यहाँ आये थे, तब तो वे आपके पास नहीं गये थे?"

"नहीं। तब छुट्टी नहीं रही होगी। अभी छुट्टी लेकर आ रहे हैं शिकार करने के लिए।"

"आपलोगों के घर में रहेंगे?"

"यहाँ और कहाँ जायेंगे? वैसे, वे जल्दी किसी के घर ठहरना नहीं चाहते हैं। लेकिन हमारे साथ उनका सम्पर्क जरा अलग है। पिताजी को भैया कहा करते थे और बड़े भाई-जैसा ही सम्मान देते थे। मुझे भी अपने बेटे-जैसा मानते थे।"

सखीचाँद के मन में उम्मीदों का दीया थोड़ा और उद्दीप्त हुआ। थोड़ा-सा सकुचाकर वे बोले, "कुछ भी कहिये, बहुत कड़े अफसर हैं वे। अब इसे बदनाम मानिये, या सुनाम। देखिये न, एक मामूली बात को लेकर मेरे खिलाफ रिपोर्ट कर दिया है उन्होंने शायद। अभी अगर नौकरी चली जाय, तो मेरा तो जीना मुश्किल हो जायेगा। जमाना कैसा आ गया है, आप तो देख ही रहे हैं। मेरे इसी पोस्ट के

लिए बी.ए., एम.ए. तक वालों ने दरख्वास्त किया था। ...ऐसा नहीं हो सकता कि आप जरा... "

सकुचाकर रुक गये सखीचाँद; लेकिन अनिल को समझने में असुविधा नहीं हुई।

"अरे बाप, यह मुझसे नहीं होगा। और फिर इसका उल्टा असर भी हो सकता है। सिफारिश से वे बहुत चिढ़ते हैं।"

"ये बात है।" सखीचाँद ने प्रकट में कहा। हालाँकि मन-ही-मन वे बोले, "खच्चर!"

चुपचाप कुछ देर चलकर दोनों सखीचाँद के क्वार्टर के पास पहुँचे। फूस की छप्पर, टाट का घर। छोटा-सा एक बरामदा भी था, जिस पर थोड़ी-सी धूप आ रहीं थी।

"धूप में बैठा जाय, क्या ख्याल है? कल से ठण्ड पड़ने लगी है।"

"हाँ, धूप में ही ठीक रहेगा।"

बरामदे के एक तरफ लकड़ी का एक छोटा-सा टेबल पड़ा था। उसे खींचकर सखीचाँद धूप में ले आये। इसके बाद घर से वे टीन की दो कुर्सियाँ निकाल लाये। फिर दुबारा वे घर में घुसे। खट-पट की आवाजें आने लगीं।

"अनिल बाबू, जरा अन्दर आईये तो।"

अन्दर घुसकर अनिल ने देखा, सखीचाँद एक टेबल के ड्रॉअर के साथ खींचतान कर रहे थे।

"ड्रॉअर जाम हो गया है, देखिये तो खोल सकते हैं कि नहीं। सुना है कि आप बहुत ताकतवर हैं। श्रवण बढ़ई से बनवाया था इसे। मजदूरी अच्छा-खासा लिया था उसने। कहा था- असली टीक है, लेकिन हालत देखिये। इस ड्रॉअर को मेरी वाईफ खोल पायेगी भला?"

"ड्रॉअर खोलकर क्या होगा अभी? चलिये, एक हाथ शतरंज खेलते हैं।"

"अरे साहब, इस ड्रॉअर के अन्दर ही तो शतरंज की गोटियाँ हैं।"

"ओ-हो!"

अनिल ने एक बार खींचकर देखा, सही में जाम था ड्रॉअर।

"पूरी तरह जाम हो गया है। आम की कच्ची लकड़ी लगा दिया है। एक काम कीजिये, आप टेबल को खूब मजबूती से पकड़िये, मैं पूरी ताकत से खींचता हूँ। टेबल खिसकनी नहीं चाहिए।"

"रुकिये, फिर तो टेबल को थोड़ा खिसका लेता हूँ। दीवार से टिके रहने पर सपोर्ट मिलेगा मुझे।"

वही किया गया। अनिल ताकतवर व्यक्ति थे। एक बार जोर लगाकर ही ड्रॉअर को खोल लिया उन्होंने। लेकिन एक दुघर्टना घट गयी। दीवार पर टेबल के सामने ही बँधी हुई एक तस्वीर लटक रही थी। सखीचाँद का सिर लगने से वह तस्वीर फर्श पर गिरी और उसका काँच चूर हो गया।

"ओ-हो-हो-हो, यह क्या कर डाला मैंने?" वे बेचारे आर्तनाद कर उठे।

"सिर में लगी क्या?" अनिल जल्दी से आगे बढ़े।

"नहीं, सिर में नहीं लगी है," कहकर एक बार मुस्कुराकर सखीचाँद फिर बोले, "दिल में लगी है। यह किसकी तस्वीर है, जानते हैं? देखिये।"

अनिल के हाथों में उन्होंने वह तस्वीर दी। एक हँसमुख किशोरी की तस्वीर। नीचे नाम भी लिखा, हालाँकि अँग्रेजी में- 'मिसेज वैदेही यादव।'

मुस्कुराकर सखीचाँद बोले, "मेरी पत्नी। माइनर स्कूल में पढ़ती है।"

"आपकी तरह बँगला बोल सकती है?"

"मुझसे भी बेहतर। उसका मामाघर तो पाकुड़ है न, वहाँ सभी बँगला बोलते हैं।"

"तस्वीर किसने खींची?"

मुस्कुराकर ही सखीचाँद ने उत्तर दिया, "मेरे शाले ने। उसके ससुरजी ने उसे एक कीमती कैमरा दिलवा दिया है। खूब तस्वीरें खींचता फिर रहा है। मेरी भी एक तस्वीर खींचकर ले गया है वह। लाईये दीजिये, आज ही साहेबगंज भेजना होगा घोषाल के हाथों। फिर बँधवाकर ले आयेगा। बँधवाना ही होगा।"

सखीचाँद ने तस्वीर को कायदे के साथ एक अखबार में लपेटा, फिर सुतली से उसे अच्छे से बाँधा और फिर उसे ट्रंक के अन्दर रख दिया।

"आईये अब, एक दाँव हो जाय।"

दोनों बाहर आकर टेबल पर शतरंज की बिसात बिछाकर बैठ गये।

--दो--

साहेबी पोशाक पहने, मुँह में पाईप लगाये भुवन सोम जहाज की प्रथम श्रेणी में एक आरामकुर्सी में अधलेटे आत्मनिमग्न हो अपने ही बारे में सोच रहे थे।

जब भी वे अकेले होते, वर्तमान में नहीं रह सकते थे, अतीत में लौट जाते। मन-ही-मन बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन कर रहे थे वे।

सोम साहब की वास्तविक उम्र साठ के करीब थी, लेकिन शरीर उस हिसाब से ढीला-ढाला नहीं हुआ था। सिर के सामने की तरफ के बाल थोड़े विरल हो गये थे, कलमों में थोड़ी-बहुत सफेदी आ गयी थी, दो-एक दाँत भी उखड़वाने पड़े थे, मगर शरीर अब भी मजबूत था।

ऑफिस के दस्तावेजों में उनकी उम्र चौवन साल दर्ज थी। देखने में वे इससे भी कम उम्र के लगते थे। कुछ वर्षों बाद ही उन्हें रिटायर होना है। रिटायर होने के बाद भी बहुतों को नौकरी में 'एक्सटेन्शन' मिला है, या उन्हें नयी नौकरी में बहाल कर लिया गया है; लेकिन उनके मामले में ऐसी कोई आशा नहीं की जा सकती। उनका सर्विस रिकॉर्ड बहुत बढ़िया है, फिर भी उम्मीद नहीं है। कारण, वे चापलूसी नहीं कर सकते और आजकल के उनके ऊपरवाले कोई अधिकारी उनसे संतुष्ट नहीं हैं।

सारा जीवन उन्होंने युद्ध किया है, युद्ध में क्षत-विक्षत हुए हैं, लेकिन अन्याय भाव से कभी किसी के सामने सिर नहीं झुकाया है उन्होंने। अँग्रेज साहेब लोग उनकी कद्र करते थे, इसलिए मामूली किरानी के पद से आज वे ए.टी.एस. बन पाये थे। आजकल के अधिकारियों का जमाना होता, तो यह सम्भव नहीं था। ये लोग पहले ही यह पता लगाते हैं कि सामने वाले की जाति क्या है- हरिजन है कि नहीं; इसके बाद पता लगाते हैं कि सत्याग्रह करके कभी जेल गया है कि नहीं! योग्यता का सवाल सबसे अन्त में उठता। पहली तीन बातें अनुकूल रहने पर योग्यता न होने से भी चलता। यदि किसी मिनिस्टर के साथ किसी की आत्मीयता हो, तो फिर तो कहना ही क्या! भुवन सोम को ये सुविधायें प्राप्त नहीं थीं, इसलिए उनकी नौकरी की मियाद नहीं बढ़ेगी- यह वे जानते थे। वे यह भी जानते थे कि पिछले जन्म में उन्होंने सम्भवतः कोई गम्भीर पाप किया होगा, जिस कारण इस देश में जन्म लेकर इतना कष्ट भोगकर जा रहे हैं वे। कभी-कभी उन्हें लगता, इसके बजाय अफ्रिका के जंगलों में अगर वे जन्मे होते, तो ज्यादा सुखी रहते।

सिर्फ कर्मजीवन में ही नहीं, सामाजिक जीवन में भी उन्हें बार-बार चोट खायी थी। किसी ने उनसे प्यार के दो बोल नहीं कहे। अपने माता-पिता, भाई-बहन, बेटे-बेटी, आत्मीय-स्वजन- किसी ने भी नहीं। जब उनकी उम्र सोलह साल थी, तभी उनके पिता एक बड़े परिवार तथा विशाल ऋण का बोझ उनके कन्धों पर डालते

हुए होशो-हवास में हरिनाम संकीर्तन करते हुए चल बसे- सम्भवतः स्वर्ग ही गये...। उनदिनों की याद आने पर भुवन सोम आज भी सिहर जाते हैं। घर में फूटी कौड़ी तक नहीं, बाजार में कोई उधार देने को राजी नहीं। सचमुच उनकी आँखों के सामने अन्धेरा छाया हुआ था उनदिनों। सूर्य उगता है कि नहीं, उगने पर उससे रोशनी निकलती है कि नहीं- यह सब खबर रखने का तब समय नहीं था उनके पास।

सोचते-सोचते अचानक दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया भुवन सोम ने। यह प्रणाम पितृबन्धु जोगेन हाजरा के लिए था। जब भी उनकी याद आती, वे प्रणाम करते। सज्जन ने भले तीन विवाह कर रखा था, मगर आदमी वे सच्चे थे। पिताजी की मृत्यु के बाद एक उन्होंने ही आकर खोज-खबर लिया था निस्वार्थ भाव से। डी.टी.एस. ऑफिस में नौकरी करते थे, स्वयं डी.टी.एस. की कृपादृष्टि थी उनपर। उन्होंने ही अनुनय-विनय करके भुवन सोम की नौकरी लगवा दी। उनके खुद के बेटे ने भी एण्ट्रेन्स पास किया था उनदिनों, मगर बेटे के स्थान पर भुवन सोम की नौकरी लगवा दी उन्होंने।

आज का समय होता, तो बेशक वे ऐसा नहीं कर पाते। आजकल भद्र परिवार की सन्तान के लिए कोई उपाय नहीं है; मोची, मेहतर डोम होने से कोई बात ही नहीं, नहीं तो अन्ततः नापित या ग्वाला तो होना पड़ेगा। ब्राह्मण, वैश्य कायस्थ की सन्तान होना आजकल अपराध की श्रेणी में गिना जाता है।

स्वाधीनता पाकर क्या चतुर्भुज हो गये हैं हम! चारों तरफ चोरों की भरमार है। दो-चार को छोड़ कोई टिकट कटाकर ट्रेन में नहीं चलता आजकल। टिकट कलेक्टर और गार्ड मिलकर दो-चार पैसे खाकर चुपके से झुण्ड के झुण्ड यात्रियों को पार करा देते हैं। माल-असबाब भी ब्रेक-वैन में बिना पैसों के चले जाते हैं। रंगे हाथ पकड़कर ऊपर रिपोर्ट करने का भी कोई परिणाम नहीं निकलता- मिनिस्टर के रिश्तेदार के रिश्तेदार होने या उनके करीबी भी होने से लोग छूट जाते हैं। स्वाधीनता सिर्फ बेईमानों की स्वाधीनता बन कर रह गयी है, भद्रजनों के लिए आफत है यह।

भुवन सोम ने पाईप में कश लगाया। धुएँ को कुछ क्षणों तक मुँह में रोके रखा उन्होंने। फिर धीरे-धीरे छोड़ा। इसके बाद फिर गुजरे जीवन के हिसाब-किताब में डूब गये वे पैर हिलाते हुए।

उनका सारा जीवन लड़ते हुए बीता है। माँ जब तक जीवित थीं, तब तक उनका सारा ध्यान इसी बात पर लगा रहता था कि बेटे से कोई गलती होती है

या नहीं। भुवन सोम ने यथासाध्य कोशिश की कि गलती न हो, मगर फिर भी वे माँ को प्रसन्न नहीं कर पाये। माँ के मन में यह धारणा घर कर गयी थी कि पति की मृत्यु के बाद उनकी सारी खुशियाँ समाप्त हो गयी हैं और अब जीवित रहने का मतलब है- पाप का बोझ बढ़ाना।

उनकी सबसे बड़ी शिकायत यह थी कि बेटियों की शादी भुवन सोम ढंग से नहीं करा पाये। अगर पति जीवित रहते, तो दोनों बदसूरत, बज्जात लड़कियाँ राजाओं के घर में ब्याही जातीं! भुवन सोम ने अपनी तरफ से कोशिशों में कोई कमी नहीं की थी। दोनों बहनों का विवाह कराने में पाँच हजार रुपये का कर्ज लेना पड़ा था उनको। इसके अलावे, माँ के सारे गहने भी देने पड़े थे। फिर भी, उस विरंचीलाल और जगन्नाथ के सिवा कोई और वर नहीं मिला- बेहतर वर को राजी नहीं ही किया जा सका।

इस देश में विरंचीलाल और जगन्नाथ से भी गये-गुजरे वर पाये जाते हैं, वे भी विवाह करके घर-गृहस्थी बसाके सुख-चैन के साथ जीवन बिताते हैं। मगर भुवन सोम की दोनों गुणवती बहनें ऐसा न कर सकीं। ससुराल गयीं ही नहीं, बोलीं- देहात में जाकर वे नहीं रह सकतीं। माँ ने भी उनका समर्थन किया। देहात में मलेरिया, सड़े हुए तालाब, साँप और न जाने क्या-क्या होते हैं, वहाँ भला रहा जा सकता है! आखिरकार नहीं ही गयीं दोनों ससुराल। फलस्वरुप दोनों भग्नीपति कुछ दिनों के बाद आकर भुवन सोम के कन्धों पर सवार हो गये। भाँजे-भाँजियों की जिम्मेवारी भी भुवन सोम को ही उठानी पड़ी।

विरंची और जगन्नाथ की उन्होंने छोटी-मोटी नौकरी लगवा दी- यहाँ-वहाँ अनुरोध करके। फिर भी, वे अलग रहने नहीं गये। माँ ने ही नहीं जाने दिया। नौकरी होने के बावजूद दोनों भुवन सोम की एक पैसे की भी मदद नहीं करते थे। जबकि चुपके-चुपके एसेन्स खरीदकर लाते, राबड़ी खरीदके लाकर चोरी-चोरी खाते। भाव कुछ ऐसा था मानो, भुवन सोम उनका भरण-पोषण करने के लिए बाध्य हैं। वंशवृद्धि भी उनकी कुछ कम नहीं थी। दोनों बहनों की कुल-मिलाकर चौदह सन्तानें हुईं। इन बच्चों ने भुवन सोम की दुनिया को तहस-नहस कर दिया था। शौक से एक बगीचा लगा रखा था उन्होंने। फूल का एक पौधा भी नहीं रहने दिया, घर में कभी चैन की नीन्द नहीं सोने दिया, दिन-रात घर में हल्ला-गुल्ला और रोना-धोना मचा रहता। अन्त में चोरी करना भी सीख लिया। जेब से पैसे पहले से ही उड़ाते थे, एक दिन बड़ी वाली के गहने चोरी चले गये।

लेकिन माँ उनपर ढंग से शासन नहीं कर पायीं। माँ सदा उनके सामने ढाल बनी रहतीं, उनके लिए अनर्गल झूठ बोलतीं।

रावण के इस खानदान का पेट भरने के चक्कर में भुवन सोम खुद कभी कोई अच्छी चीज नहीं खा पाये। छोटी मछलियाँ तक रोज खाने नहीं मिली। सामान्य दाल-भात-सब्जी खाकर सारा जीवन बिताया। दाल भी बढ़िया नसीब नहीं हुई। रोज वही कलाई (उड़द) की दाल- कभी-कभी माँड़ मिला हुआ। अब तो ऐसा हो गया है कि कोई दूसरी दाल रुचती ही नहीं। हजम भी नहीं होती है।

उस दिन एक पार्टी में आमंत्रित थे। चॉप कटलेट दोलमा डेविल- कितनी तरह की चीजें थीं, मगर उनसे कुछ खाया नहीं गया। भिण्डी, बैंगन या परवल की भुजिया होने से वे खाते शायद। शुरुआती जीवन में दूध तक नहीं मिला उन्हें पीने के लिए। घर में एक गाय थी- दो सेर करीब दूध होता था; मगर उनके भाग्य में कभी एक बूँद नहीं जुटा। माँ अफीम लेती थीं, सो उनके लिए थोड़ा-सा दूध पकाकर गाढ़ा किया जाता था; बाकी में पानी मिलाकर उसे छोटे बच्चों को दिया जाता। घर में तीन-चार छोटे बच्चे हमेशा रहते ही थे। उन्हें वंचित कर दूध पीने की बात भुवन सोम कभी सोच भी नहीं सकते थे। वे नहीं सोच सकते थे, मगर शरीर भला क्यों बर्दाश्त करने लगा?

एक रोज ऑफिस से लौटते समय चक्कर खाकर गिर गये। चन्दर डॉक्टर आये। बोले, 'ब्लड-प्रेशर बहुत कम है, पौष्टिक आहार लेने की जरुरत है।' मांस, मछली, अण्डा, दूध की एक लम्बी सूची थमा गये वे। माँ ने यह कहा जरुर कि शरीर के लिए जब जरुरी है, तो उधार लेकर भी इन चीजों की व्यवस्था करनी होगी; लेकिन भुवन सोम जानते थे कि माँ तो उधार चुकाने से रहीं, चुकाना तो उन्हें ही है। जिन्दगी की गाड़ी खींचने में ऐसे ही उनकी जीभ निकली जा रही थी, उधार चुकाना उनके बस में नहीं था।

दो दिनों बाद भुवन सोम ने डॅक्टर साहब से भेंट करके कहा, 'डॉक्टर साहब, यह सब स्पेशल भोजन मैं अकेले सबके सामने बैठकर नहीं खा सकता। सबको ऐसा खिलाने की सामर्थ्य भी मुझमें नहीं है। आप ऐसा कीजिये कि मुझे कोई पेटेण्ट टॉनिक दे दीजिये।'

चन्दर डॉक्टर आम तौर पर मरीज का मन रख ही लेते थे। यदि कोई कहता, 'डॉक्टर बाबू, खट्टा खा सकता हूँ?', तो कहते, 'खाओ।' डायबिटीज के रोगी अनुनय-विनय करके चीनी खाने की अनुमति भी पा जाते थे उनसे। एक मामले में वे लेकिन बहुत सख्त थे- झूठा सर्टिफिकेट वे कभी नहीं लिखते थे।

सफेद मूँछों और सफेद भौंहों वाले सदा प्रसन्नचित्त चन्दर डॉक्टर का चेहरा भुवन सोम की स्मृति में तैर गया। उन्होंने कोई एक विदेशी पेटेण्ट टॉनिक लिख दिया था उनके लिए। टॉनिक का नाम अभी ध्यान नहीं आ रहा। बोतलबन्द चिकन एक्सट्रैक्ट और कॉड लीवर ऑयल की व्यवस्था हो गयी थी। खरीदते वक्त भुवन सोम की जिह्ना बाहर निकल आयी थी। दूसरी बार फिर नहीं खरीदा।

...ईजी चेयर से उठ खड़े हुए। हू-हू कर बहती हवाओं में कनकनी का अहसास हुआ। बैग से मंकी कैप निकालकर उसे पहन लिया। अच्छी-खासी ठण्ड पड़ने लगी है। मंकी कैप पहनकर आराम मिला। हाल ही में उनकी बड़ी पुत्रवधू ने इसे बुनकर भेजवाया है। इस तरह के शौकिया कामों में वह निपुण है, मगर बड़ी या अचार बनाना उसके बस में नहीं है- ये चीजें खरीदकर लाती है। अगर पका-पकाया दाल-भात भी बाजार में मिलता, तो उसे बड़ा आराम होता। सुनने में आ रहा है कि कोलकाता में पाईस होटल बन रहे हैं आजकल।

"ओह, बर्बादी की तरफ किस तेजी से बढ़ा जा रहा है यह देश, क्या था और देखते-देखते क्या हो गया!" खुद से ही बुदबुदा पड़े भुवन सोम।

इसके बाद गंगा के दियारा की तरफ देखा उन्होंने। गंगा के दोनों तरफ दियारा बन गये थे। *(दियारा- रेत के जमने से बनने वाले छोटे-बड़े टीले या टापू।)* कुछ देर अन्यमनस्क भाव से तकते रहे वे। कहाँ, चिड़िया तो एक भी नजर नहीं आ रही। अनिल ने तो लिखा था कि झुण्ड के झुण्ड हँस आये हुए हैं। कहाँ हैं सब?

"सर, कुर्सी को थोड़ा उस तरफ खिसका दूँ? यहाँ हवा तेज है।"

कन्धे के बिलकुल पास में आवाज सुनकर चौंक पड़े भुवन सोम। मुड़कर देखा, स्टीमर का टी.टी.सी. दैन्य मुखमुद्रा में खड़ा था।

"जरुरत पड़ी, तो में खुद खिसका लूँगा। आपको परेशान नहीं होना है। आप अपना काम कीजिये जाकर।"

युवक सहमकर जाने लगा।

"सुनो।"

लौटकर आया।

"क्या नाम है तुम्हारा?"

"विकासेन्दु गुप्त।"

"आप लोग अपने मन से एक गलत धारणा को पूरी तरह मिटा डालिये। खुशामद करके मेरा मन कभी नहीं जीत सकते। नेवर। मैं ओल्ड स्कूल का आदमी हूँ। ड्यूटी फर्स्ट, सेल्फ लास्ट- यही मेरा मोटो है। अच्छे से ड्यूटी करो, मैं खुश रहूँगा; काम में कोताही मुझे बर्दाश्त नहीं। सलाम करते हुए कमर झुका लीजिये, फिर भी मुझे फर्क नहीं पड़ेगा। समझे?"

"जी हाँ।"

"ठीक है, जाईये।"

युवक सिर झुकाये चला गया। उसकी तरफ कुछ देर देखते रहे भुवन सोम। अचानक युवक भला लगा उन्हें। दियारा के लड़के आम तौर पर ढीठ होते हैं, यह वैसा नहीं है। पॉकेट से नोटबुक निकालकर नाम नोट कर लिया उन्होंने। यदि अवसर मिला, तो उसकी तरक्की करवा देंगे।

पाईप में फिर तम्बाकू भरने लगे वे। अच्छे-से तम्बाकू भरने के बाद मिनट भर गुमसुम बैठे रहे वे। एक नीलकण्ठ पानी के ऊपर उड़ रहा था- अचानक वह स्थिर हो गया- सिर्फ डैने दोनों फड़फड़ा रहे थे। इसके बाद एक झपट्टा मारा पानी में उसने और अगले ही पल एक छोटी-सी मछली चोंच में लेकर उड़ गया। यह दृश्य बहुत सुन्दर लगा उन्हें।

पाईप में एक कश लगाया उन्होंने। कश लगाते ही ध्यान गया- अभी तक जलाया ही नहीं है। दो-तीन बार कोशिश करके भी वे जला नहीं पाये- हवा काफी तेज थी। उठकर केबिन में गये, वहाँ निपुझाता के साथ पाईप को जलाकर फिर लौट आये। आकर फिर आरामकुर्सी पर पीठ टिकाकर बैठे। वह नीलकण्ठ फिर नजर नहीं आया। पाईप में कश लगाते हुए फिर अपने अतीत जीवन में खो गये वे।

सिर्फ बहनों को लेकर ही नहीं, बल्कि दोनों भाईयों को लेकर भी उन्हें काफी कुछ झेलना पड़ा था। दोनों में से किसी की भी पढ़ाई-लिखाई नहीं हुई थी। पढ़ाई-लिखाई किया ही नहीं। प्रत्येक क्लास में एकाध बार नहीं, तीन-चार बार करके फेल होने लगे दोनों। चौथे क्लास में ही मूछें उग आयीं। भुवन सोम ने तब भी उम्मीद नहीं छोड़ी। मगर स्कूल के हेडमास्टर महादेव बाबू सख्त व्यक्ति थे, उन्होंने नाम काटकर दोनों को बाहर का रास्ता दिखा दिया। भुवन सोम से वे बोले, "दोनों को स्कूल में रखना सम्भव नहीं; बच्चों को सिगरेट पीना रहे हैं वे दोनों।" पढ़ाई-लिखाई की यहीं इति हो गयी। माँ ने कहा था, कोलकाता में बोर्डिंग

में रखकर पढ़ाने के लिए। यह भुवन सोम के सामर्थ्य के बाहर की बात थी। इसे लेकर माँ ने कुछ दिनों तक बक-झक किया, बाद में शान्त हो गयीं।

भाई दोनों ने भले पढ़ाई-लिखाई नहीं की, मगर अन्य क्षेत्रों में नाम कमाया। विपिन मूँछें साफ करके *(नाटकों में)* ऐसा 'फीमेल' पार्ट करने लगा कि चारों तरफ उसकी तारीफ होने लगी। और खोकन ने नाम कमाया फुटबॉल में। जबर्दस्त सेण्टर-फॉरवर्ड बना वह।

देखा जाय, तो एक तरह से ठीक ही हुआ। बी.ए., एम.ए. करके कोई चार हाथ तो नहीं उग आते, और उग भी जाते तो आखिर में दो हाथों से नौकरी ही करनी होती कोई। विपिन, खोकन को भी नौकरियाँ मिलीं, अच्छी नौकरियाँ ही मिलीं। थियेटर के कारण ही इंजीनियरिंग ऑफिस में नौकरी लग गयी विपिन की। उसका 'सीता' का अभिनय देखकर इंजीनियरिंग ऑफिस के बड़े बाबू रो ही पड़े थे। अगले दिन ही बुलवाकर नौकरी दे दिया उसे।

खोकन के साथ भी ऐसा ही हुआ। खेल की बदौलत नौकरी मिली। मोहन बागान एक कमजोर टीम के साथ मैच खेल रहा था। सब जानते थे, कमजोर टीम बुरी तरह हारेगी। मगर खोकन के चलते वह टीम जीत गयी। खोकन उनकी तरफ से सेण्टर-फॉरवर्ड था। दर्शकों में मेकेंजी लॉयल के बड़े साहब थे। खोकन उनकी नजर में आ गया और फलस्वरुप उसकी नौकरी लग गयी।

भुवन सोम पाईप में कश लगाते हुए सोचने लगे- लगता है, मानो ये कल की ही बातें हों! जबकि...

अचानक वे उठ खड़े हुए। एक दियारे पर अनगिनत लाल बत्तखें बैठी हुई थीं- कई झुण्डों में। लुब्ध दृष्टि से ताकते रहे। किसी नौकर को लेकर यहाँ तक आया नहीं जा सकता?अनिल ने क्या व्यवस्था कर रखी है, कौन जाने। जब तक दिखायी पड़ता रहा, चिड़ियों को वे देखते रहे।

शिकार करना ही फिलहाल उनका एकमात्र शौक है। सिर्फ शौक ही नहीं, मुक्ति का उपाय भी है। जिन्दगी की जद्दो-जहद से भाग निकलने के लिए तरह-तरह के उपाय खोजते रहे वे सारी उम्र। नहीं मिला। कुछ समय चित्रकारी की। एक ऐंग्लो-इण्डियन गार्ड ने उन्हें वाटर-कलर की दीक्षा दी थी। मिस्टर ब्राउन में कुछ खासियत तो थी। कभी-कभी शराब के नशे में बेतुकी हरकतें कर बैठते थे, मगर इन्सान के रुप में बहुत ही भले व्यक्ति थे। उनकी शागिर्दगी में रहते हुए भुवन सोम ने शराब के दो-एक घूँट भी चखे थे बीच-बीच में। आपत्ति करने पर कहते थे, "पानी और शराब में कोई अन्तर नहीं है, बस दृष्टिकोण का अन्तर है।"